समाज विकासमाला

मिलजुलकर काम करो

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ५६

मिल-जुलकर काम करो

लेखक

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

सम्पादक

यशपाल जैन

१९५६

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक :
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक :
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वह काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की माँग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों। यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इन सबकी भाषा बड़ी आसान रखी गई है और जहाँतक हो सका है, कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं होने दिया है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। विषय ऐसे लिये गए हैं, जिनमें पाठकों की खास रुचि हो। छपाई-सफाई के बारे में विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

हम चाहते हैं कि इन किताबों को पढ़कर इनके बारे में पाठक हमें अपनी राय लिखें। यदि पुस्तकों की भाषा-शैली, विषय और छपाई में उन्हें सुधार की गुंजाइश मालूम होती हो तो उसकी भी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें। हम उनपर विचार करेंगे और उन सुझावों के आधार पर किताबों को और ज्यादा अच्छी और उपयोगी बनाने का प्रयत्न करेंगे।

—मंत्री

पाठकों से

आपने कहावत सुनी होगी--'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।' इसका मतलब यह है कि कोई भी बड़ा काम आदमी अकेला नहीं कर सकता, लेकिन बहुत-से आदमी मिलकर ऐसे-ऐसे काम कर डालते हैं कि देखकर अचरज होता है। मिल-जुलकर काम करने में बड़ी शक्ति होती है।

इस पुस्तक में बड़े रोचक ढंग से बताया गया है कि संगठित रूप से काम करने में कितना लाभ होता है! आप इसे ध्यान से पढ़ें और इसमें जो बातें बताई गई हैं, उनपर अपने जीवन में अमल करें। उससे आपको तो लाभ होगा ही, देश भी आगे बढ़ेगा।

--सम्पादक

मिल-जुलकर काम करो

: १ :

किसी गांव में एक बूढ़ा किसान रहता था। उसके दो बेटे थे। एक का नाम था किसन, दूसरे का बिसन। वे सब मिल-जुलकर रहते थे। गांव में और आसपास उनका नाम था और मान था। वे लोग अच्छे खाते-पीते लोग थे और बहुत ही मिलनसार थे। दूसरों के दुःख-दर्द में हाथ बंटाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे।

एक दिन दैवयोग से अचानक बूढ़े की आँखें मुंद गईं। उसके मरने के बाद कुछ दिन तक तो घर की गाड़ी ठीक चली; लेकिन बाद में हालत बिगड़ने लगी। दोनों भाइयों की बहुओं में आपसी जलन इतनी बढ़ गई कि बंटवारा करना पड़ा। मिल-जुलकर रहने से थोड़े में ज्यादा काम हो जाता था। एक हल की खेती में घर मजे में चल जाता था, लेकिन अब जमीन के बंटवारे के साथ-साथ पशु और खेती के औजार भी बंट गए। इतना ही नहीं, जरूरत के हिसाब से कुछ नये पशु और औजार भी खरीदने पड़े। इधर पूंजी का यह अन-

चाहा खर्च हुआ, उधर आदमी भी बंट गए। नतीजा यह हुआ कि आमदनी घट गई, खर्च बढ़ गया। बाप-दादों की कमाई, उनका नाम, धीरे-धीरे लोप होने लगा।

जेठा भाई किसन फिर भी सुखी था। उसके बाल-बच्चे समझदार थे। वे मां-बाप का कहना ही नहीं मानते थे, उनके काम में भी हाथ बंटाते थे और जहांतक बस चलता था, जिस काम में हाथ डालते थे उसे पूरा करने की कोशिश करते थे। पति-पत्नी को इससे संतोष था। वे पूरे यत्न से अपने बुरे दिनों से लोहा ले रहे थे। थोड़ी-सी आमदनी में संतोष का धन जोड़कर, उससे पूरा लाभ उठा रहे थे। परन्तु छोटा भाई बिसन बुरी तरह फँसा हुआ था। धन की कमी के साथ-साथ उसकी पत्नी का मिजाज भी बिगड़ता जा रहा था। जेठानी का संतोष उसे पहले से भी ज्यादा जलाने लगा। बाल-बच्चे काबू से बाहर होने लगे। घर-गिरस्ती के कामों में वे जरा भी हाथ नहीं बंटाते थे। बिसन की चिन्ताएं दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थीं।

इन्हीं दिनों देश में अकाल पड़ गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। बहुत-से किसानों ने लाचार होकर अपने खेत-खलिहान और घर-बार को छोड़, नगरों

की तरफ़ मुँह किया। वहां उन्हें नौकरी मिलने की आशा जो थी। अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालने के लिए अब यही एक आसरा था।

रोज़ी की खोज में किसन को भी घर-बार छोड़ना पड़ा। पर मुँह उठाकर अकेले चल पड़ना उसके और उसकी पत्नी के स्वभाव में नहीं था। समूचा परिवार बैलगाड़ी में बैठकर किसी नगर की ओर चल पड़ा।

चलते-चलते दोपहर हो गई। धूप तेज़ हो गई तो थोड़ी देर के लिए एक घने पेड़ की छाया में उन्होंने पड़ाव डाला। बैलों को पानी पिलाकर चरने के लिए छोड़ देने के बाद वे अपने खाने-पीने का डौल जमाने लगे। बड़ा लड़का जंगल से लकड़ी बीन लाया, छोटे बच्चे मिलकर झरने से पानी ले आये, मां आटा और दाल-चावल ठीककर आग सुलगाने लगी। बिसन भी खाली न बैठ रस्सी बटने में लग गया।

कहते हैं, मुसीबत कभी अकेली नहीं आती। चोट पर दूसरी चोट पड़ ही जाती है। इन लोगों का काम अभी पूरा नहीं हो पाया था कि उन्हें उस जंगल का देव दीख पड़ा। भयानक राक्षस को सामने देखकर किसन-परिवार का घबरा जाना स्वाभाविक ही था।

रस्सी बँटते किसन के पास जाकर देव ने पूछा, "यहां क्या कर रहे हो ? मेरे इस राज में बिना पूछे कैसे घुस आये ?"

इस धमकी-भरे सवाल से किसन पहले तो कुछ सहमा; पर उसका धीरज न टूटा। उसे अचानक बचपन में पढ़ी एक कहानी याद आ गई।

एक बार कुछ कबूतर दल बांधकर उड़े जा रहे थे कि कुछ दूरी पर जंगल में उन्हें अनाज के दाने बिखरे दिखलाई पड़े। मनचले नौजवान कबूतर ललचा उठे। कबूतरों के बूढ़े नेता ने समझाया, "इस जंगल में अनाज के दाने कहां से आये ! किसी शिकारी ने बखेरे होंगे। हम-जैसे लोभी जीवों के फाँसने के लिए ही यह जाल बिछाया गया है। सो हम रुकें नहीं, आगे चलें।" पर लोभी को सीख कब लगती है ? वे उतरे, लेकिन उतरे सब मिलकर। बड़े-बूढ़े भी साथ में रहे। नेता को जो डर था वही हुआ। वे सब जाल में फँस गये। अब लगे पछताने, एक-दूसरे को कोसने। परन्तु बूढ़े नेता ने धीरज बंधाया और बच निकलने का रास्ता सुझाया। उसने कहा, "बस, अब एक काम करो। पछताने या कोसने में बेकार समय मत गंवाओ। एक साथ जोर लगाओ और इस जाल को

ही लेकर उड़ चलो ।"

नेता की सूझ और अपनी जान बचाने की चिन्ता ने कबूतरों को एक कर दिया । सबने एक साथ जोर लगाया । जाल फूल-सा हलका हो गया । शिकारी के देखते-देखते कबूतर-तो-कबूतर, उसका जाल भी उससे छिन गया । कुछ देर तक तो शिकारी इस आशा में रहा कि कब ये आपस में लड़ें और कब जाल के साथ-साथ नीचे आ गिरें, परन्तु कबूतर अब समझदार हो गए थे । वे पूरे जोर से उड़ते चले गए और कुछ ही देर में शिकारी की पहुंच से बाहर हो गए ।



सबने एक साथ जोर लगाया तो जाल भी ले गये

कबूतरों के बूढ़े नेता की सूझ ने ऐसे आड़े समय में किसन का साथ दिया। बड़े धीरज से उसने देव को उत्तर दिया, "दोस्त, हम लोग यहां तुम्हें बाँधने के लिए आये हैं। उसीके लिए मैं यह रस्सी बँट रहा हूं।"

उसका इशारा देना था कि छोटे-बड़े सब एक-साथ दौड़ पड़े और सबने मिलकर देव को रस्सी में लपेट लिया। कितना डरावना, लम्बा-चौड़ा, तगड़ा देव था वह! पर सबकी मिली-जुली ताकत के सामने उसकी कुछ न चली। मिनटों में ही बस में आ गया। रस्सी में बँधकर वह गिड़गिड़ाने लगा। बोला, "मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हें बड़ा फायदा पहुंचाऊंगा। देखो, इसी पेड़ के पास वह जगह खोद डालो। वहां बहुत-सा धन तुम्हें मिलेगा।"

किसन ने उसकी बात मान ली और उसे छोड़ दिया। उसके बताये स्थान को खोदने पर उन्हें बहुत-सा धन मिला और अब पेट भरने के लिए नगर में जाने की जरूरत न रही। वे अपने गांव लौट आये।

किसन की यह कहानी बिसन को मालूम हुई तो उसने भी अपना भाग्य आजमाना चाहा। एक दिन वह भी अपने बाल-बच्चों को साथ लेकर उसी तरह

चल दिया, जैसे किसन गया था।

बिसन और उसके बच्चों ने किसन का पूरा नाटक खेला। गांव से बैलगाड़ी में सवार हुए और दोपहर होते-होते उसी पेड़ के नीचे पड़ाव डालकर ठहरे। भूख लगी, पर लकड़ी कौन लावे? पानी एक-एक करके सब पी आये, पर आटा मांड़ने के लिए कौन लाता! बैल भी प्यासे बंधे रहे। किसीने उन्हें खोलने तक का कष्ट न उठाया। हां, बिसन रस्सी अवश्य बँटने लगा। देव को बाँधने के लिए रस्सी जरूरी थी न?

थोड़ी देर में देव आया। उसने कड़ककर पूछा, "मेरे राज में बिना पूछे कैसे आये?" बिसन ने किसन की तरह डपटकर कहा, "ठहरो, मैं तुम्हें बाँधने के लिए यह रस्सी बँट रहा हूं।"

पर कहने से ही तो देव बँधनेवाला था नहीं! बिसन उसको बाँधना चाहता था और उसके बाल-बच्चे भी धन पाने की आशा में उसे बँधा देखना चाहते थे, पर जब मिलकर बाँधने का मौका आया तो कोई किसीके साथ नहीं हुआ। देव हँसा और बोला, "भले आदमियो, देव इस तरह नहीं बँधता है। जब तुम अपना पेट भरने के लिए रोटी तैयार करने

में भी एक-दूसरे का साथ नहीं दे सकते तो मुझ-जैसे को क्या बाँधोगे ! जाओ, अब की बार छोड़े देता हूँ। आगे फिर कभी इधर मुँह मत करना।"

बेचारा बिसन अपना-सा मुँह लेकर घर लौट आया, पर कुछ सीख कर। पत्नी भी इस घटना से कुछ अधिक समझदार हो गई। उनके दिल में यह बात घर कर गई कि मेल-जोल का देव ही वह सच्चा देव है जो मनुष्य की मेहनत और समझ के फल को दुगना-चौगुना कर देता है। छप्पर को बहुत-से आदमी मिलकर उठाते हैं। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

: २ :

इसी सिलसिले में सेठ बुद्धमल की कहानी भी बड़ी मज़ेदार है। सेठ बुद्धूमल एक बड़े व्यापारी थे। व्यापार में उन्होंने लाखों रुपये कमाये। शहर के एक विशाल भवन में उनका दफ्तर था। व्यापार में उनकी बुद्धि ही नहीं चलती थी, हाथ-पैर भी खूब चलते थे। वह बड़े चौकन्ने और फुर्तीले थे।

पर एक दिन देखा कि वह बड़ी उलझन में हैं। उनके शरीर के अंगों ने हड़ताल कर दी थी। सबका गुस्सा पेट पर था। उनका कहना था कि मेहनत करते

हैं वे सब, मौज उड़ाता है पेट। यह कहाँ का न्याय है ?

बुद्धूमल बेचारे बड़े हैरान थे। हाथ-पैर चल नहीं रहे थे, दिमाग़ ने सोचना छोड़ दिया था, जीभ चुप थी। पेट को खाना कौन पहुंचावे ? धीरे-धीरे कुछ समय बीत गया, तब सबपर मुर्दनी छाने लगी। जो हाथ-पैर गुस्सा हो रहे थे, उन्होंने ही देखा कि हड़ताल का पेट पर इतना असर नहीं है, जितना कि खुद उनपर। अंत में उनको मालूम हुआ कि पेट महाशय जो कुछ लेते हैं, वह सबको बांट देते हैं। अपने लिए कुछ नहीं रखते। यह देह सबके मेल-जोल से चलती है। शरीर को चलाने के लिए उसके हर अंग को काम करना जरूरी है। अतः तंग आकर उन्होंने हड़ताल तोड़ दी। अंगों के आपसी सहयोग से बुद्धूमल की गाड़ी फिर चलने लगी। असल में हमारा शरीर एक मशीन की तरह है। उसका छोटा-सा भी पुर्जा बेकार हो जाय तो मशीन की शोभा ही नहीं बिगड़ती, वह काम करना भी बन्द कर देती है। शरीर के सब अंगों का आपस में सहयोग रहता है, तभी काम चलता है। पांव में कांटा चुभा कि हाथ उसे निकालने के लिए उतावला हो उठता है। शरीर में कहीं भी चोट लगे, आँखों में पानी आ जाता है। आपसी मेल-जोल निहायत जरूरी

है। सब मिलकर काम नहीं करेंगे तो हमारे समाज और देश की वही हालत होगी, जो सेठ बुद्धूमल की हुई।

: ३ :

छोड़िये आदमी की कहानी। यह देखिये नन्हीं-नन्हीं चींटियों की एक लम्बी कतार। कितनी तेजी से सब-की-सब चली जा रही हैं! आपने देखा होगा कि कोई भी खाने की छोटी-मोटी, मीठी चीज़ खुली रह गई, कि चींटियां आ धमकीं! मज़े की बात यह कि वे अकेली नहीं आतीं। अपने साथ सौ-पचास की फौज लाती हैं। क्या आप सोचते हैं कि यह छोटा-सा जीव बहुत खाऊ होता है? नहीं, उसकी इतनी हवस अपने नन्हें-से पेट के लिए नहीं होती। जीव-जन्तुओं की जानकारी रखनेवाले बताते हैं कि चींटियां बड़ी-बड़ी बस्तियां बसा कर रहती हैं। उनका बिल ऊपर से एक छोटा-सा छेद दिखाई देता है; परन्तु उसके भीतर दालान, अनाज की कोठियाँ, चौपालें, आराम के कमरे आदि सब होते हैं, यहांतक कि खेत भी पाये जाते हैं। यह सारा काम और सामान न तो अकेली एक चींटी के बस का है, न एक को इसकी दरकार ही हो सकती है। इसका साफ़ मतलब यह है कि चींटियां केवल

अपने लिए ही नहीं जीतीं, दूसरों के भी काम आती हैं।

चींटी-जीवन के जानकार बताते हैं कि इस छोटे-से कीड़े की आदत ही ऐसी होती है कि यह अपने कुनबे के लिए अपने-आपको खपा देती है। चीटियों की बस्ती में अपने-अपने काम-धंधों के कारण चींटियां अनेक नामों से पुकारी जाती हैं। कुछ चींटियां इतनी कमेरी होती हैं कि उनका नाम ही 'कमेरी' पड़ गया है। क्या वे अपनी एक नन्हीं-सी जान के लिए इतनी दौड़-धूप करती हैं ? कभी नहीं। 'रानी' और 'मां' चींटियों की टहल करना, उन्हें उनके कमरों में खाना पहुंचाना, अंडों की देख-भाल करना, बस्तियों की सफाई और पहरेदारी आदि सब काम, ये चींटियां मिल-जुलकर करती हैं

मधु-मक्खियों का संगठन भी बहुत-कुछ चींटियों की तरह ही होता है। हरेक मधु-मक्खी दूसरी मधु-मक्खी के लिए जीती और मरती है। सब मिलकर काम करती हैं और मिलकर अपनी मेहनत के फल का उपभोग करती हैं।

चींटियों तथा मधु-मक्खियों के इस समाज में बिना हाथ-पैर हिलाये—दूसरों की मेहनत पर जीनेवालों के लिए कोई जगह नहीं। ऐसों को समाज से बाहर कर दिया

जाता है, जहां वे भूखों मर जाते हैं। जीना हो तो मिलकर काम करो।

केवल चींटियों में ही नहीं, दूसरे जानवरों में भी दल या टोली बनाकर रहने और काम करने की आदत पाई जाती है। भेड़िए सदा झुण्ड में रहते हैं। अपनी टोली के जोर पर वे अपने से अधिक ताकतवर जानवरों को भी पछाड़ देते हैं। मौसम बदलने पर अपने रहने के स्थान को बदलनेवाले पक्षी जब यात्रा करते हैं तो एक-साथ सैकड़ों की तादाद में। बड़ी टोली होने के कारण उन्हें यात्रा के संकटों की चिन्ता नहीं रहती। संकट आ भी जाय तो उसका मुकाबला वे बड़ी हिम्मत और धीरज के साथ करते हैं।

: ४ :

जिन्दा रहना और सुखी रहना कौन नहीं चाहता? अस्सी वर्ष की एक बुढ़िया थी। न आँखों से सूझता था, न कानों से सुन पड़ता था। हाथ-पैर तो चलते ही नहीं थे। कमर दुहरी हो गई थी, सिर धरती पर झुका जाता था। हर घड़ी वह कहती रहती थी, —"हे भगवान, तू मुझे उठा ले।

एक दिन वह कोठा, जिसमें वह बुढ़िया पड़ी

रहती थी, गिरने लगा। लोगों ने देखा कि वह बुढ़िया जैसे-तैसे कोठे से निकलकर बाहर आ गई। जीवन का मोह! मौत बुलाने आई, पर वह उसके हाथ से निकल आई।

कोई कितना ही कमजोर और निकम्मा क्यों न हो, जीवन का मोह और सुख की चाह उससे नहीं छूटती। यह भी सच है कि कोई भी आदमी अपने आप में भरा-पूरा नहीं है। कोई-न-कोई कमी उसमें होती ही है। वह कमी मिल-जुलकर काम करने से ही पूरी होती है।

मिल-जुलकर रहनेवाले लोगों की आपस में तभी पट सकती है जब वे एक-दूसरे के लिए अपने मतलब को छोड़ें। हर समय, हर जगह जो अपना मतलब देखेगा, वह दूसरों के साथ कैसे निभेगा? हर समय, हर जगह अपने फायदे की ही सोचनेवाला मनुष्य अपने परिवार, समाज, देश या संसार के लिए कोई भी त्याग नहीं कर सकता।

कहते हैं कि एक बार देवताओं और असुरों में लड़ाई हो गई। असुरों में लड़ने की ताकत ज्यादा थी। देवों को चिन्ता हुई कि अगर असुर जीत गए तो क्या होगा? यही एक सवाल सबकी जबान पर था।

सभा हुई, सोच-विचार हुआ। देवताओं के राजा इन्द्र ने कहा, "मुझे एक ऐसे आदमी की हड्डियां चाहिए, जिसने कठोर तप किया हो। उसकी हड्डियों से बने वज्र से असुर जरूर मारे जायंगे।"

ऋषि दधीचि की ओर सबका ध्यान गया। इन्द्र ने उनसे हड्डियां मांगीं। दूसरों के लाभ के लिए ऋषि दधीचि ने अपनी हड्डियां देने में तनिक भी आनाकानी न की। वह दूसरों के लिए बलि हो गए। उनकी हड्डियों से बने वज्र से असुरों को हरा दिया गया। एक दधीचि के त्याग ने सारे देव-समाज को बचा लिया।

एक बार यह भूमि अपने भीतर बोये गए सब बीजों को पचा गई। इससे वह खुद तो मजबूत हो गई, परन्तु अन्न-फल के अभाव से लोगों में हाहाकार मच गया। उस समय पृथु नाम के राजा राज करते थे। वह बड़े धर्मात्मा थे। प्रजा का हर तरह से भला चाहने और करनेवाले थे। प्रजा की पुकार उनसे सुनी नहीं गई। उन्होंने ऋषि-महर्षियों से सलाह की। उनकी सलाह से उन्हें भूमि पर अपना शस्त्र उठाना पड़ा। वह धनुष-बाण लेकर भूमि की ओर लपके।

भूमि ने गाय का शरीर धारण कर लिया और स्वर्ग की ओर भागी। भागकर बड़े-बड़े देवताओं की शरण में पहुंची। ब्रह्मा, विष्णु और महेश से उसने अपने बचाव की प्रार्थना की। परन्तु स्वार्थ में सनी भूमि का किसीने भी साथ न दिया। भू-लोक के सारे निवासियों का जीवन एक ओर था, भूमि अकेली दूसरी ओर थी।

सब ओर से निराश होकर अन्त में वह पृथु की ओर चली। बाणों की मार को देर तक वह सहन नहीं कर सकी और पृथु के सामने उसने घुटने टेक दिये।

भूमि ने कहा, "महाराज, मेरी रक्षा करो। मैं सब लोकों का पालन-पोषण करनेवाली हूं। यदि मैं मारी गई, तो आप प्रजा का पालन कैसे कर पायंगे?"

राजा पृथु ने कहा, "भूमि, तू सच कहती है। परन्तु आज तू सबका पालन करनेवाली नहीं, सबको मारनेवाली बनी हुई है। जितने भी बीज थे, सबको पचाकर तू आप तो तगड़ी हो गई, परन्तु सारी प्रजा भूख से व्याकुल होकर तड़प रही है।"

इतना कहकर महाराज पृथु ने ऊबड़-खाबड़ भूमि को फैलाकर समतल कर दिया। इससे उसका नाम पृथ्वी पड़ा। पृथ्वी-रूपी गाय दुही गई, तब

अन्न उगा, फल और वनस्पतियाँ हुईं। प्रजा सुख-शान्ति से आनन्दित हो उठी।

: ५ :

सहयोग अच्छे कामों के लिए ही होना चाहिए। बुरे कामों का आखिरी फल कभी अच्छा नहीं होता। इस पर भी, अपने काम की सफलता के लिए चोरों-डाकुओं तक को आपसी सहयोग से काम करना पड़ता है। अगर ऐसा न करें तो वे कभी सफल नहीं हो सकते।

लेकिन जैसाकि हमने ऊपर कहा है, बुरे काम का फल कभी अच्छा नहीं होता। ऐसा सहयोग कुछ लोगों के स्वार्थ को ही पूरा करता है। पूरे-के-पूरे समाज को उससे कोई फायदा नहीं पहुंचता। खुद बुरे लोगों को भी जब बुरे काम का नतीजा भोगने का मौका आता है, तो इस काम का लाभ उठानेवाले तो साफ़ बच जाते हैं, फंसते वे ही लोग हैं, जिन्होंने ऐसा काम किया था।

कहते हैं, वाल्मीकि पहले डाकू थे। जंगलों में रहते थे। इक्के-दुक्के मुसाफिरों को पकड़कर लूट लेते और उससे अपना तथा अपने कुनबे का पेट

भरते। जब-जब वाल्मीकि लूट का माल लाते, उनके घरवाले बड़े खुश होते।

एक दिन की बात। कुछ संत वाल्मीकि के हाथ पड़ गए। वाल्मीकि ने कहा,–"अपना माल निकालो!"



"भाई, तुम ऐसा पेशा क्यों करते हो?"

भला संतों के पास क्या निकलता! फल यह हुआ कि वाल्मीकि ने साधुओं की खूब दुर्गति की। अंत में उनमें से एक ने कहा, "भाई, तुम यह पेशा क्यों करते हो, जिससे दूसरों को कष्ट पहुंचता है?"

वाल्मीकि ने कहा, "मुझे दूसरों को सताने में मजा थोड़े-ही आता है। पर बताओ, मैं करूं क्या? इस

तरह से लूट-मार न करूं तो खुद क्या खाऊं और अपने घरवालों को क्या खिलाऊं ?"

संतों ने पूछा, "क्यों ? तुम्हारी लूट के बिना उनका काम ही नहीं चल सकता ? आखिर कैसा परिवार है तुम्हारा, जो तुम्हें ऐसे खतरे उठाने देता है ?"

वाल्मीकि बोले, "भरा-पूरा मेरा परिवार है । मां-बाप, भाई-बहन, स्त्री-संतान, सभी हैं। पेट सभी का भरना है। पहले सबको खिलाता हूं, फिर खुद खाता हूं।"

"फिर तो तुम्हारे घरवाले तुमपर जान देते होंगे ? कल अगर तुम पकड़े जाओ तब तो वे तुम्हारा साथ देंगे न ? उनसे जाकर पूछो, तुम जो पाप करते हो, उसमें वे कितना हिस्सा बटावेंगे ?"

यह बात वाल्मीकि को लग गई। घर पहुंचकर उन्होंने एक-एक करके सभीसे यही सवाल किया। सबने--उनकी स्त्री तक ने--यही उत्तर दिया, "अपनी करनी का फल तुम नहीं तो क्या हम भोगेंगे ? हम उसमें तुम्हारा साथ कैसे दे सकते हैं ?"

इससे वाल्मीकि की आँखें खुल गईं। सगे-सम्बन्धियों की इस भावना ने उनको विरागी बना दिया।

कठोर तपस्या के बाद वही वाल्मीकि ऋषि बने। जब हम किसी अच्छे काम के लिए सहयोग करते हैं, तो उसका लाभ हमारे साथ-साथ समाज को भी मिलता है। इसलिए हमें चाहिए कि हम अच्छे कामों में सहयोग करें, बुरे कामों में नहीं।

: ६ :

कहा जाता है—"साझे की नाव मंझधार में डूबती है।" इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ऐसी कहावतें भी हमारे सामाजिक जीवन के एक पहलू को दिखाती हैं।

एक बार की बात है कि एक राजा ने अपने चतुर मंत्री को आज्ञा दी कि वह प्रजा की राजभक्ति की परीक्षा ले। मुँह के सामने तो सभी हाथ जोड़ते दिखाई देते हैं। राजा यह देखना चाहते थे कि उनकी आज्ञा का मान पीठ पीछे भी होता है या नहीं। चतुर मंत्री ने अगले दिन नगर में ढिंढोरा पिटवाया कि नगर के बाहर मान तलैया को दूध से भरना है। नगर का हर छोटा-बड़ा निवासी सवेरा होने से पहले एक-एक लोटा दूध उसमें डाल आवे। लोगों ने राजा की आज्ञा सुनी और समझ ली। परन्तु अगले दिन राजा और मंत्री

ने आश्चर्य से देखा कि तलैया में दूध की जगह पानी-ही-पानी भरा था। बात यह हुई कि हर आदमी ने सोचा कि और तो सभी लोग दूध डालेंगे; मैं एक लोटा पानी डाल आऊं तो क्या पता चलेगा। इस तरह सबने पानी ही डाला।

राजा भोज के दरबार में कवियों और गायकों को इनाम मिला करता था। यह बात दूर-दूर तक फैल गई। एक रोज एक किसान कुछ पाने की आशा से उधर जा निकला। पर वह न तो कवि था, न गवैया। एक चतुर दरबारी ने उसकी मदद की। अपने हल पर बढ़िया-सा कपड़ा चढ़ाकर वह दरबार में दूसरे गवैयों और बाजेवालों के साथ जा पहुंचा। जब सबके बाजे बजने लगे, वह भी इस नये बाजे की खूंटियां मरोड़ने और मुँह से गाने की चेष्टाओं का स्वांग करने लगा। सबको इनाम मिला, उसे भी मिल गया। पर चतुर मंत्री से न रहा गया। उसने कहा, "ओ नये बाजेवाले, जरा अपना बाजा अकेले बजाकर तो दिखा।" सिखाया-पढ़ाया किसान चट बोला, "मंत्रीजी, इस बाजे का नाम है शामिलबाजा। यह अकेला कभी नहीं बजता।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे शामिलबाजे



"यह बाजा अकेला नहीं बजता।"

कभी-कभी संगठन के असली उद्देश्य को बिगाड़ देते हैं, परंतु गीदड़ों के डर से ख़रबूजों की खेती तो छोड़ी नहीं जाती। सहयोग से जो लाभ हैं, उन्हें देखते सहयोग की भावना को बढ़ाना होगा, पर साथ ही सहयोग की आड़ में पनपनेवाली बुराइयों से बचे रहने की कोशिश भी करते रहना होगा।

: ७ :

ऊपर की कहानियों से पता लग जाता है कि मिल-जुलकर रहना कितना जरूरी है। उसके बिना

आदमी बहुत दिन तक अपना काम नहीं चला सकता। गाय-भैंस, कौवा, कबूतर आदि पशु-पक्षियों के बच्चे तो शुरू से ही अपने पैरों पर खड़े होने लगते हैं, लेकिन आदमी का बच्चा तो कितने ही सालों तक दूसरों का मुँह देखता रहता है। मां-बाप में बच्चे के लिए सच्चा प्रेम और सहानुभूति न हो तो वह भला कैसे जीवित रहे, कैसे बढ़े और संसार कैसे चले? सच बात यह है कि सहयोग के बिना आदमी को खाने के लिए रोटी भी नहीं मिल सकती। मामूली आदमी कह सकता है कि वाह, यह भी आपने खूब कही। अरे, बाजार में रोटी आने-आने में मिलती हैं। बात सच है, रोटी बाजार में मिल सकती है, लेकिन अगर आप थोड़ा गहराई से सोचें तो पता चलेगा कि रोटी के पीछे कितने आदमियों की मेहनत है। किसान बैलों और अपने बाल-बच्चों की मदद से पहले धरती ठीक करता है, फिर गेहूं बोता है, उपजाता है, उनकी देखभाल करता है, पकने पर काटता है और घर लाता है। बाद में वह बाजार में पहुंचता है। लोग उसे खरीदते हैं, पिसवाते हैं। तब रोटी बनती है। बात देखने में मामूली-सी लगती है, पर उसके पीछे कितनों की मेहनत है, कितनों का पसीना है।

: ८ :

आइये, जरा पीछे मुड़कर देखें। दुनिया के आरंभ में आदमी आज जैसा न था। वह भोजन की खोज में जंगलों में भटकता था। वह अकेला था और मनमानी करता था। इसलिए वह कमजोर था। लेकिन धीरे-धीरे उसने सहयोग का सबक सीखा। उसने देखा कि मिल-जुलकर शिकार करना भी आसान है और दुश्मनों से अपना बचाव करना भी।

आगे चलकर उसने खेती-बाड़ी करना सीखा। पता चला कि यह काम भी अकेले आदमी के बूते का नहीं है। इसलिए उसे दूसरों के साथ और अधिक मिल-जुलकर काम करना सीखना पड़ा। लगभग इसी अवस्था के साथ उसने पशुओं का पालना तथा दूसरी उपयोगी चीजों के बनाने का काम शुरू किया।

बिना एक-दूसरे की मदद के इतने काम कैसे पार पड़ सकते थे ? इस तरह जैसे-जैसे आदमी आगे बढ़ता गया, आपसी सहयोग बढ़ता गया। लेकिन बाद में जैसे ही आदमी के अंदर स्वार्थ की भावना पैदा हुई कि बना-बनाया खेल बिगड़ने लगा। आपस में रगड़ हुई और उस रगड़ से ऐसी आग पैदा हुई कि उसने लोगों को आपस में बांध रखनेवाले धागे को ही जला कर

राख कर दिया। आज हम दुनिया में यह रगड़ चारों ओर देखते हैं। नतीजा यह हुआ है कि सहयोग की कड़ी टूट जाने से हमारा सारा समाज, राष्ट्र और संसार बिखरा-सा दीख पड़ता है।

लेकिन लोग यह भी अनुभव करते हैं कि अगर दुनिया को जीना है, आगे बढ़ना है, शांति रखनी है और सुखी होना है, तो हमें एक-दूसरे के साथ सहयोग करना ही पड़ेगा। अब अकेले का जमाना नहीं है। हम सबका भाग्य एक-दूसरे से बंधा है। डूबेंगे तो एक-साथ डूबेंगे, उबरेंगे तो एक-साथ उबरेंगे।

हमारा देश आठ साल से आज़ाद है। उसे बनाने-बिगाड़ने की जिम्मेदारी और किसी दूसरे के हाथ नहीं है, हमारे अपने हाथों में है। हम चाहते हैं कि हमारे देश की गरीबी दूर हो, बेरोजगारी मिटे, हर आदमी पढ़ा-लिखा हो, उसके रहने के लिए घर और बीमार पड़ने पर इलाज की व्यवस्था हो। यानी हम चाहते हैं कि हम सच्चे अर्थों में आज़ाद हों। बात बड़ी अच्छी है और शायद ही कोई हो, जो ऐसा न चाहता हो, लेकिन सवाल यह है कि इतना बड़ा काम हो कैसे?

सवाल बड़ा तो है ही; साथ ही अच्छा भी है।

इससे मिलती एक कहानी याद आती है।

एक किसान था। उसके कई बेटे थे। उनके आपसी झगड़ों से वह बड़ा परेशान था। उसके सामने तो वे उसके कहने-सुनने से कुछ कर भी लिया करते थे, पर बूढ़े को चिन्ता यह थी कि उसके बाद क्या होगा ? लड़के बिखर गए तो घर-बार सब-का-सब चौपट हो जायगा। खानदान का नाम मिट्टी में मिल जायगा। क्या करे, कुछ समझ में नहीं आता था।

जब उसका अंत समय नजदीक आया, तो उसने अपने लड़कों से कहा, "खेत मे रुपया गड़ा हुआ है। मेरे मरने के बाद निकाल लेना।"

लड़कों ने पूछा, "कहां है ? कौन-से खेत में ?"

पर पिता के तो प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। वह जवाब क्या देता ! अब लड़के बड़ी परेशानी में पड़े। किसी तरह से लोक-लाज के डर से मिलकर पिता का दाहकर्म किया। फिर धन की खोज में लग गए। ठीक-ठीक जगह का पता न होने के कारण उन्होंने सोचा कि क्यों न सारे खेतों को ही खोद डालें ? आखिर कहीं-न-कहीं तो गड़ा धन मिलेगा ही।

काम इक्के-दुक्के के बस का था नहीं। सभी मिलकर खुदाई पर लग गए। खेत का चप्पा-चप्पा

खोद डाला। पर रुपया न मिला। सोचा, शायद धन कुछ और नीचे हो, सो उन्होंने कुछ और गहरी खुदाई की। जमीन खूब खुद गई। नीचे की मिट्टी ऊपर आ गई। ऐसी हो गई जैसी दस जुताइयों में भी न होती। इतने पर भी रुपया न मिला तो एक बात उनकी समझ में आई। उन्होंने कहा, "क्यों न इस जमीन में कुछ बो



सबने मिलकर खूब गहरी खुदाई की

दें ? रुपये का तो पता चल नहीं सका, अब अपनी मेहनत को क्यों बेकार जाने दें ?"

लड़कों ने खेतों को बोया। खूब देखभाल की। कुछ ही महीनों में फल सामने आ गया। खेत लहलहा

उठे। इतनी पैदावार हुई, जितनी वर्षों में नहीं हुई थी। लड़के मालामाल हो गए। अब उन्हें पता लगा कि खेत में गड़े धन का क्या मतलब था, और बुढ़ऊ ने उसकी जगह क्यों नहीं बताई थी। साथ ही इससे उन्हें मिल-जुलकर काम करने के फायदे भी मालूम हो गये। फिर उन्होंने एक-दूसरे का साथ कभी नहीं छोड़ा। जबतक रहे, मिलकर रहे और सुख से रहे।

हमारे ऊपर के सवाल का जवाब भी यही है। देश की सच्ची आजादी के लिए गरीबी को दूर करना जरूरी है। गरीबी दूर करने की कुंजी मिलकर काम करना है। देश की तरक्की तभी हो सकती है जब हम सभी एक-दूसरे की भलाई की सोचें, मिलकर काम करें और अपने फर्ज को ईमानदारी से पूरा करें। फिर हमारा हर काम अच्छे फल देगा। धरती सोना उगलेगी। कारखानों से माल निकलेगा। खुशहाली चारों तरफ फैलेगी। एककी खुशी सबकी खुशी होगी। यही हमारे सवाल का जवाब है। है न ?

हमारा देश गांवों में बसता है। ७५ फीसदी लोग गांवों में रहते हैं। किसी जमाने में गाँव भारत के जीवन की बहुत-ही मजबूत इकाई थे। गांव सुखी थे, देश सुखी था। लेकिन सैकड़ों सालों की गुलामी ने

उनका रूप बदल दिया। अनाज और कपास पैदा करनेवाले किसान तक की यह हालत हो गई कि उसके पास अपने खाने के लिए भी अनाज न रहा, न पहनने के लिए कपड़े। इस हालत को अब जल्दी-से-जल्दी बदल देना है। नेहरूजी ने ठीक ही कहा है, "हमारे देश में बहादुर आदमियों की कमी नहीं रही है। अक्लमंद आदमियों की भी कमी नहीं रही है। जिस बात की कमी रही, वह यह कि हम आपस में मिलकर काम करना भूल गए। अंग्रेज यहाँ आये। कौन-सी बड़ी फतह उन्होंने की ? वे हिन्दुस्तान के हकूमत के तख्ते पर बैठ गए, क्योंकि वह खाली था और हम लोग एक-दूसरे से लड़ते थे।" आगे चलकर कहते हैं, "अब हमें देश की दौलत बढ़ानी है। यह असली सवाल है। इसके लिए जरूरी है कि देश में अच्छा संगठन हो, एकता हो, मिल-जुलकर काम करने की भावना हो।"

देश को सुखी बनाने का काम हम सबका काम है। इसको पूरा करना हम सबके लिए जरूरी है। उसमें हमारा अपना फायदा तो है ही, समाज और राष्ट्र का भी फायदा है।

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

५६

छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल